'उससे कहते हैं कि कुछ व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...' व्रत, शील, संयमादि कोई व्यवहार नहीं है। **'इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है,...'** वह पहले आया था प्रवृत्ति। प्रवृत्ति कोई व्यवहार नहीं है, उसको मानना कि यह व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार है। नहीं है उसको मानना उसका ना व्यवहार है। कोई प्रवृत्ति **'व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...'** वह तो अपनी परिणति है। निश्चय से अपनी परिणति है। **'इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दे;...'** मान्यता छोड़ दे व्यवहार की, ये व्रत, नियम, शील, पूजा, भक्ति मोक्षमार्ग है ऐसी मान्यता छोड़ दे। क्या छोड़ेगा तू? वस्तु को छोड़ देगा? छोड़कर कहाँ जायेगा? समझ में आया?

'और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...' व्यवहार छोड़ने योग्य है, निश्चय आदरणीय है ऐसा हुआ, **'ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...'** देखो! कैसी? इस श्रद्धान से। क्या श्रद्धान से? व्यवहार छोड़ने लायक है, व्यवहार हेय है, व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसे श्रद्धान से, ऐसा श्रद्धान करके **'इनको तो बाह्य...'** ऐसा श्रद्धान हो तो व्रत, शिल, संयमादिक को **'बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...'** वह तो उपचार से कहा है। है नहीं, **'यह तो परद्रव्याश्रित है;...'** वह तो परद्रव्याश्रित रागादि है वह कहीं मोक्षमार्ग है नहीं। इसलिये उसको मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे। व्रत छोड़कर कहाँ जायेगा? शुभ परिणाम को छोड़कर कहाँ जायेगा? ... तो बराबर है। नहीं तो पाप में नीचे गिर जायेगा। वह बात विशेष करेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

बुधवार, दि. २२-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १४

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। यहाँ तक आया,... **'यह तो परद्रव्याश्रित है;...'** क्या? शिष्य ने प्रश्न किया कि तुम व्रत, शील, संयम को तो असत्यार्थ, झूठा और हेय कहते हो, तो हम छोड़ देंगे व्रत, संयम। झूठा कहो तो हम किसलिये करें?

व्रत, शील, अदंतधोवन आदि मुनि की क्रिया है न? बाह्य, लोंच करना, खड़े-खड़े आहार करना, एक बार आहार करना, लो, इत्यादि क्रिया तो... और अन्दर राग, उसको तो तुम असत्यार्थ कहते हो, झूठ कहते हो, हेय कहते हो। हम नहीं कार्य करेंगे। ऐसा प्रश्न हुआ। भैया! वह कार्य न करे क्या? उसको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। समझ में आया? व्रत, नियम का परिणाम व्यवहार नहीं, उसको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। छोड़ दे, श्रद्धा छोड़ दे कि यह मोक्षमार्ग नहीं है। क्यों? कि वह '**यह तो परद्रव्याश्रित है।**' वह तो, श्रद्धा सम्यग्दर्शन आदि हो और व्रत, शील आदि हो (तो) बाह्य सहकारी कारण देखकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। वह मोक्षमार्ग है नहीं, क्योंकि वह तो परद्रव्याश्रित है। देह की क्रिया और राग सब परद्रव्याश्रित है।

'**तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है,...**' उसमें बहुरी, बहुरी किया है? नयी प्रत में? नयी प्रत में बहुरी किया है? कि और (लिखा है)? क्यों बोलते नहीं हो, क्या है? और। छपी है उसमें तो बहुरी है, ये तो अपनी नयी में। और? ठीक। बहुरी अर्थात् '**सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है,...**' शुद्ध आत्मा राग रहित, पुण्य रहित, विकल्प रहित अपनी चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता वही एक सच्चा मोक्षमार्ग है। उसको तो निमित्त देखकर व्यवहार कहा था। '**वह स्वद्रव्याश्रित है।**' मोक्षमार्ग जो अपना है वह तो स्वद्रव्याश्रित है। आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। वही स्वद्रव्याश्रित मार्ग को मोक्षमार्ग कहते हैं। परद्रव्याश्रित मार्ग को मोक्षमार्ग कहते नहीं, व्यवहार से कहते हैं। '**इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना।**' इसप्रकार व्यवहार को। ऐसा भी न मानना, कर्म ही का मानना, वह भ्रम है। शेठी!

... राग-द्वेष हमारे नहीं, हमारे नहीं, हमारे नहीं, हमें क्या है? बात नहीं करना, राग-द्वेष की बात नहीं करना। शुभ-अशुभ बात ही नहीं करना। हमारे में है ही नहीं। भ्रमणा है तुझे, मिथ्यात्व है। '**संसारी के भी रागादिक न मानना, उन्हें कर्मही का मानना...**' देखो! कर्मही का पहले निमित्त से कहा, लेकिन निमित्त का है ऐसा मानना भ्रमणा है। कर्म ही का मानना पहले कहा, व्यवहार से। लेकिन ऐसा मानना कि उसका है (वह) मिथ्यात्व है। वह तो तेरे से है, वह तो निमित्त से कथन चला है। समझ में आया? कर्म की बड़ी झंझट गड़बड़ी चलती है, जहाँ-तहाँ लगा दे। ऐसा कर्म में लिखा है, देखो! घनघाति कर्म है, देखो! आत्मा की पर्याय को घनघातं-नाश करता है। जैसे भारी हथौड़ा पड़े न हथौड़ा (वैसे)। देखो, नाम पड़ा है, अनादि नाम है कि नया है? घनघाति कर्म, चार घनघाति कर्म, चार अघनघाति कर्म। सुन तो सही प्रभु! वह तो निमित्त का कथन है। कर्म किसका घात करे? एक द्रव्य की पर्याय दूसरे में कोई घात कर सकती है? समझ में आया? ऐसा कभी बनता नहीं।

मानता है, मानो। इससे कहीं वस्तु पलट जाती है?

'**कर्महीी का मानना वह भी भ्रम है।**' जब तक हमारे कर्म का उदय है तब तक हमारे में विकार रहेगा, कर्म छूट जायेगा तो विकार नहीं रहेगा। ऐसा मानना भ्रमणा है। तेरे में कमज़ोरी है तो विकार तेरे से होता है, कमज़ोरी छूट जायेगी तो विकार नहीं रहेगा, तेरे कारण से, पर के कारण से है नहीं। देखो, यहाँ भी कुछ लोग कहते हैं कि, वह लोग तो कहते हैं, ऐसा है। विकार-फिकार आत्मा का नहीं। कौन कहता है? सुन तो सही। कहते हैं कि नहीं? कहते हैं। वह तो सिद्ध समान की बात करते हैं, सिद्ध समान की बात करते हैं। विकार आत्मा का नहीं। विकार नहीं माने तो विकार टालने का प्रयत्न क्यों करें? ऐसा कहकर आक्षेप करते हैं। अरे.. सुन तो सही। पर्याय में विकार अपने से यह पुकार तो पहले से करते हैं। समझ में आया? अपने से विकार अपने में है, कर्म से नहीं, कर्म तो निमित्त मात्र है। अपना विपरीत पुरुषार्थ से, उलटा पुरुषार्थ से विकार होता है, सुलटा पुरुषार्थ से विकार का नाश होता है। पर के कारण कुछ है नहीं। निमित्त है तो ज्ञान करने की चीज है। समझ में आया?

'**इस प्रकार नयों द्वारा एक ही वस्तु को...**' एक ही वस्तु को, '**एक भाव अपेक्षा, 'ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना**'...' राग सहित भी मानना, राग रहित भी मानना। केवलज्ञान सहित भी मानना, मतिज्ञान सहित भी मानना ऐसा न हो। समझे? '**एक भाव अपेक्षा...**' भाव नाम पर्याय, हाँ! शक्ति--गुण की यहाँ बात नहीं है। एक पर्याय की अपेक्षा '**ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना**', **वह तो मिथ्याबुद्धि है।**' धीरे से बात की मिथ्याबुद्धि है। मिथ्यादृष्टि है ऐसा कहते हैं मूल में तो। '**परन्तु भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है...**' समझे? भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा। पर्याय की अपेक्षा हो, द्रव्य की अपेक्षा से केवलज्ञान। द्रव्य अपेक्षा से केवलज्ञान, पर्याय अपेक्षा से मतिज्ञान, द्रव्य अपेक्षा से सिद्ध समान, पर्याय अपेक्षा से संसारी।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, जुदा भाव। त्रिकाली भाव और वर्तमान। दोनों को साथ मिलाओ तो बात होती है। एक पर्याय में दो कहाँ-से आया? समझ में आया?

'**भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है--ऐसा मानकर यथासम्भव वस्तु को मानना...**' केवलज्ञान, वह शक्ति है आत्मा की, वह निश्चयनय की बात है। और प्रगट में तो मतिज्ञान है। वह भाव एक ही है, दो नय भिन्न पड़ गयी। समझ में आया? बिलकुल परम शुद्धनिश्चय से केवलज्ञान शक्ति है। और निश्चयनय से

अपनी पर्याय में मतिज्ञान है। उसको एक न्याय से पर्याय को व्यवहारनय भी कहने में आता है। यहाँ तो उसको निश्चय कहा है। पर का सम्बन्ध रहित अपनी पर्याय होती है उस अपेक्षा से। समझ में आया? **'भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है--ऐसा मानकर यथासम्भव...'** यथासम्भव, पर्याय में हो ऐसा, शक्ति में हो ऐसा, **'वस्तु को मानना सो सच्चा श्रद्धान है।'**

'इसलिये मिथ्यादृष्टि अनेकान्तरूप वस्तु को मानता है परन्तु यथार्थ भाव को पहिचानकर नहीं मान सकता...' यथार्थ भाव का ख्याल आकर मान सकता नहीं। अनेकान्त लगा दे, हम तो दोनों मानते हैं, व्यवहार भी मानते हैं, निश्चय भी मानते हैं, उपादान मानते हैं।

मुमुक्षु :-- यह गड़बड़ चल रही है।

उत्तर :-- हाँ, वह चली। हम तो उपादान भी मानते हैं, निमित्त भी मानते हैं। निमित्त की नियामकता क्या? निमित्त हो तो कार्य होता है, नहीं तो नहीं होता है, ऐसा हम तो दोनों मानते हैं। ऐसे निश्चय और व्यवहार दोनों है। व्यवहार है तो निश्चय का कार्य है, ऐसा हम तो दोनों मानते हैं। ऐसे अनेकान्त कहने में आता नहीं। वह अनेकान्त ही नहीं है, मिथ्या एकान्त है।

'तथा इस जीव को व्रत, शील, संयमादिक का अंगीकार पाया जाता है,...' देखो अब थोड़ा। व्रत, शील, संयम, इन्द्रियदमन **'इत्यादि अंगीकार पाया जाता है, सो व्यवहार से 'ये भी मोक्ष के कारण हैं'--ऐसा मानकर...'** व्यवहार से ये भी मोक्ष का कारण है ऐसा मानकर **'उन्हें उपादेय मानता है;...'** किसको? ये शील, संयम, व्रत को उपादेय मानता है। एक बात तो ऐसी करी है, अभी इसमें से थोड़ा नया लेना है, अब थोड़ा नया लेना है। इसलिये बात शुरू की है। वह सब बातें तो आ गयी है। ऐसा मानकर उन्हें मानता है, वह बात भी आ गयी है। परन्तु अब उसका अधिक स्पष्टीकरण करते हैं। वहाँ तक तो बात आ गयी है। **'सो जैसे पहले केवल व्यवहारावलम्बी जीव के अयथार्थपना कहा था वैसे ही इसके भी अयथार्थपना जानना।'**

'तथा यह ऐसा भी मानता है...' यहाँ से आया, यहाँ से नवीन बताना है। **'यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है;...'** यथायोग्य व्रत, नियम, संयम सब क्रिया तो करनी, क्रिया तो करने योग्य है, व्यवहार तो करने योग्य है। **'परन्तु इसमें ममत्व नहीं करना।'** लेकिन करने योग्य है (ऐसा मान लिया) फिर ममत्व नहीं करना कहाँ रहा? शरीरादिक की क्रिया ऐसी करना, आहार निर्दोष लेना, ऐसा लेना, फलाना करना, ऐसी जड़ की क्रिया **'व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है; परन्तु इसमें ममत्व**

नहीं करना। सो जिसका आप कर्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाय?' यह आया। क्रिया तो करने योग्य है और ममता नहीं करना, दो कहाँ-से आया? कर्ता तो है और ममता नहीं करनी कहाँ-से आया? कर्ता तो मानता है कि हम सब शरीर की क्रिया, आहार की क्रिया, अदंतधोवनी क्रिया, केशलोंच की क्रिया ये सब हम करते हैं। एक आसन बैठना, ऐसा करना, फैसा करना, भूमिशयन करना, ऐसा करना, क्रिया तो बराबर वह करनी, ममता नहीं करनी। पुद्गल का कर्ता होकर ममता नहीं करनी, दो कहाँ-से आया?

'**जिसका आप कर्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाय?**' बराबर देखकर ऐसा करना, ऐसा बैठना, कपड़ा, मोरपींछी ऐसे करके बैठना, यह सब क्रिया करनी तो बराबर, ममता नहीं करना। '**आप कर्ता नहीं है तो 'मुझ को करने योग्य है' ऐसा भाव कैसे किया?**' यदि तुम जड़ की क्रिया का कर्ता न हो तो, ये मुझे करने योग्य है ऐसा कैसे माना? कैसे माना तूने? नहीं, बराबर करना चाहिये, भैया! मोरपींछी से पोंछना, ऐसे बैठना, ऐसे करना ये सब क्रिया बराबर करनी। दो ... लोंच करना। दो-दो बार कररते हैं न? जघन्य, जघन्य। समझ में आया? ऐसा करना, ये क्रिया तो जरूर करनी। क्या, वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया?

'**और यदि कर्ता है तो वह अपना कर्म हुआ,...**' कर्ता हुआ तो वह तेरा कार्य हुआ। जड़ का कार्य तेरा और कर्ता तू हुआ। '**तब कर्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ;...**' देखो! कर्ता-कर्म सम्बन्ध जड़ का। जड़ मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता। वह तो मिथ्यादृष्टि है। पर का कर्ता-फर्ता कहाँ-से आया? समझ में आया? '**सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है।**' क्या? करनी तो योग्य है, ममता नहीं करना। अपना कार्य है, अपना कर्तव्य है, इतना काम करना (चाहिये)। मूलगुण आदि भावना, देह की क्रिया करना वह तो हमारा काम है। '**तब कर्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ; सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है।**' वह तेरी भ्रमणा है, जड़ की क्रिया आत्मा से कभी होती नहीं।

'**तो कैसे है? बाह्य व्रतादिक है वे तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रित है,...**' बाह्य व्रत, इन्द्रियदमन, ..., समझे? लोंच आदि। ऐसा आये न कि ये छोड़ दिया, वस्त्र छोड़ दिया, नग्नपना अंगीकार किया, वस्त्र छोड़ दिया, लेप छोड़ दिया, स्नान छोड़ दिया, स्नान छोड़ दिया, अस्नान की क्रिया ली। वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया? '**बाह्य व्रतादिक है वे तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रित है, परद्रव्य का आप कर्ता है नहीं;...**' मैंने स्नान छोड़ दिया हाँ भैया, मैंने आहार छोड़ दिया, इतना दिन छोड़ दिया। क्या छोड़े? जड़ का छोड़ना और जड़ का

ग्रहण करना मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :-- इसका मोह तो छोड़ा नहीं।

उत्तर :-- मोह नहीं छोड़ा है। मिथ्यात्वभाव किया है। जड़ का कर्ता और जड़ मेरा काम, मिथ्यात्व का मोह अंगीकार किया है। छोड़ा नहीं परन्तु अंगीकार किया है। विपरीत मान्यता का मोह अंगीकार किया है। शेठी! तुम्हारे दोस्त कहते हैं कि इतना तो किया न। आप करते नहीं, दुकान पर बैठते हो, खाओ, पीओ और हलवा खाओ। वह इतनी जड़ की क्रिया छोड़कर बैठे हैं कि नहीं? कपड़ा छोड़ा है, नग्नपना अंगीकार किया है, हजामत छोड़कर लोंच किया है, ऐक को छोड़ना और अनेक को ग्रहण करना। है कि नहीं? आहार छोड़कर उपवास ग्रहण किया है। सुन तो सही, वह तो जड़ की क्रिया है। उसका मैं कर्ता और वह मेरा कार्य, मिथ्यादृष्टिपना अंगीकार किया है। मोह अंगीकार किया है, मोह छोड़ा नहीं। समझ में आया?

'**इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी नहीं करना...**' शरीरादि क्रिया, लोंच मैं करता हूँ, हजामत छोड़ दी है, तेल लगाना छोड़ दिया है, ऐसा करता है, रूखा शरीर रखता है, वह सब तो जड़ की क्रिया है, तेरी क्रिया नहीं। समझ में आया? '**उसमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं करना और वहाँ ममत्व भी नहीं करना। तथा व्रतादिक में ग्रहण-त्यागरूप अपना शुभोपयोग हो,...**' देखो! थोड़ा राग आवे उसको जानना कि वह राग मेरे में है। '**वह अपने आश्रित है,...**' लोंच किया, छोड़ा, फलाना किया उसमें जो शुभ राग आया वह अपने आश्रित है। '**उसका आप कर्ता है;...**' परिणमन है न उसका, उस अपेक्षा से कर्ता है। कर्म का वह कार्य नहीं। कर्ता अर्थात् मैं करूँ ऐसा नहीं, परन्तु परिणमन उसका है कि नहीं? कि जड़ का है? शुभउपयोग है वह जड़ का काम नहीं। जीव की परिणति का काम है।

'**उसका आप कर्ता है, इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी मानना...**' देखो! मेरी परिणति है ऐसा जानना, मानना। श्रद्धा में रखना (कि) मेरी परिणति विकार है, शुभभाव, वह कहीं जड़ की परिणति नहीं। कुछ लोग कहते हैं न कि, वे कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र का मानना मिथ्यात्व है। अरे.. भगवान! कौन कहता है? सुन तो सही। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना तो राग है। समझ में आया? और राग में धर्म मानना मिथ्यात्व है। परद्रव्य की दया पाले उसको मिथ्यात्व कहते हैं। आया था न तुम्हारे उदयपुर में? चौपतिया छपवाया था। भैया! पालना, पाल क्या सकते हैं? भाव आता है दया का, लेकिन वह शुभभाव है, मिथ्यात्व नहीं। परन्तु पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है। और दयाभाव है वह आत्मा का संवर, निर्जरा का भाव है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। समझ में आया? बहुत गड़बड़ भाई! पुरानी रूढ़ि

के लोगों को ऐसी पकड़ हो गयी पकड़ अन्दर से, छूटती नहीं। चोर कोतवाल को दंडता है। समझ में आया? तुम्हारे में ऐसी कहावत है? उलटा चोर कोतवाल को दंडे। अरे.. भगवान! यहाँ ऐसा कहते हैं कि पर की दया पालना मिथ्यात्व है? पर को बचाने का भाव है वह तो पुण्य है, परन्तु मैं पर की क्रिया--बचा सकता हूँ, वह मिथ्यात्व है। दया का भाव तो मुनि को नहीं होता है? पंच महाव्रत का, अहिंसा, सत्य का, वह क्या मिथ्यात्व है? राग है, शुभ है, पुण्य है। परन्तु उसमें मैं पर की अहिंसा कर सका, मुझे भाव है तो कर सका, वह मिथ्यात्वभाव है। और अहिंसा का शुभभाव मुझे संवर का कारण है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। समझ में आया? देखो, आयेगा।

'**वहाँ ममत्व भी करना।**' देखो! ममत्व भी करना, हाँ! ममत्व का अर्थ मेरी परिणति में है, ऐसा। विकारी परिणाम मेरी परिणति में है न, कहीं जड़ की परिणति है? इतनी अपेक्षा, बस। दूसरा कुछ नहीं। फिर निश्चय की स्वभावदृष्टि में तो कोई मेरा है ही नहीं। परिणति मेरी है इतना। ममत्व नाम परिणति मेरी है, नहीं कि कर्म की परिणति है। इतना बताना है। फिर स्वभाव की दृष्टि में तो सब छोड़ दिया है। '**परन्तु इस शुभोपयोग को बन्ध का ही कारण जानना,...**' देखो! वह ग्रहण-त्याग में आया न शुभभाव? किया नहीं, जीव बचे-मरे वह नहीं। बचे-मरे, लोंच थाय, हजामत छोड़े वह नहीं। भाव जो आया शुभपरिणाम, उसको बन्ध का ही कारण मानना, '**मोक्ष का कारण नहीं जानना,...**' लो, अस्ति-नास्ति करी। अनेकान्त किया। यह अनेकान्त देखो! बन्ध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, इसका नाम अनेकान्त है। शुभोपयोग कथंचित् बन्ध का कारण, कथंचित् धर्म का कारण? समझ में आया? आ गया है। ऐसा है नहीं। कथंचित् बन्ध कहाँ से आया? सर्वथा बन्ध का कारण, सर्वथा बन्ध का कारण, हाँ! वह उसमें लिया है। कलश, कलश, कलश है न? आखिर की गाथा कल हमने पढ़ी न? कल की गाथा पढ़ी उसमें। अलम-अलम, अलम-अलम आया था न कल? अलम-अलम, पूर्ण हो, पूर्ण हो। उसमें लिखा है, देखो! द्रव्यक्रिया, सिद्धान्त को पढ़ना, लिखना किंचित् न अस्ति, अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग... नहीं है। स्वरूप अनुभव सर्वथा मोक्षमार्ग है, परन्तु पढ़ना, लिखना (नहीं)। देखो! अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। राजमल की टीका। सर्वथा, हाँ! कथंचित् की बात नहीं है। द्रव्यक्रिया, सिद्धान्त को पढ़ना, लिखना इत्यादि ये सब किंचित् न अस्ति, मेरा मोक्षमार्ग नहीं, शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव सर्वथा मोक्षमार्ग है, अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। लो, अस्ति-नास्ति की। शुभोपयोग सर्वथा बन्ध का कारण है और शुभोपयोग सर्वथा मोक्ष का कारण नहीं है। अनेकान्त ऐसा

ठराना है लोगों को, सब में अनेकान्त लगाओ। शुभ में थोड़ी संवर, निर्जरा है और थोड़ा राग है। लेकिन वह शुभोपयोग पूरा पूर्ण राग है। पूर्ण राग में किंचित् संवर, निर्जरा नहीं है। क्यों, विमलप्रसादजी! शुभोपयोग में थोड़ी संवर, निर्जरा है? नहीं है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- यह धर्मी के शुभराग की बात चलती है। अलम-अलम किसका आया? सम्यग्दृष्टि और मुनि का.. वह भी आया है उसमें, कि क्या सम्यग्दृष्टि, क्या मिथ्यादृष्टि, शुभक्रिया सब बन्ध का कारण है। वह पुण्य-पाप अधिकार लिया है। सम्यग्दृष्टि का कोई ऐसा माने कि उसके शुभभाव में कोई संवर है, बिलकुल झूठ है। उसका भी सर्वथा बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? ऐसा छपा है कि नहीं, शुभोपयोग में सर्वथा बन्ध है ऐसा नहीं। उसमें कुछ अबंध परिणाम है। धूल में भी नहीं है। समझ में आया?

'बन्ध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, क्योंकि बन्ध और मोक्ष के तो प्रतिपक्षीपना है;...' बन्ध और मोक्ष के तो विरोधपना है, वैरीपना है। **'इसलिये एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो--ऐसा मानना भ्रम है।'** देखो! शुभराग मोक्ष का भी कारण, पुण्य का भी कारण। देखो! वर्तमान में बड़े-बड़े नामवाले लगाते हैं ऐसा कि चौथे, पाँचवे, छठवें में शुभभाव में संवर है। सम्यग्दृष्टि का अशुभ भाव निर्जरा का हेतु है? भोग निर्जरा का हेतु है? तो शुभभाव निर्जरा का हेतु नहीं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- निर्जरा में लिखा है। सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का हेतु। तो अशुभभाव निर्जरा का हेतु? अरे.. चल, चल। अशुभभाव निर्जरा का हेतु किसने कहा? वहाँ कहा ही नहीं है। वह तो दृष्टि की शुद्धता की धारा चली, उसकी प्रधानता का जोर देने से निर्जरा होती है, अशुभ आया वह भी खिर जाता है, ऐसा कहने में आता है। रस थोड़ा है, खिर जाता है। क्योंकि जोर है स्वभाव पर। लेकिन अशुभभाव जो आया भोग का कारण, वह निर्जरा है? बिलकुल नहीं। बन्ध का ही कारण मुनि को भी है। शुभभाव आया तो बन्ध का कारण है तो अशुभ बन्ध का ही कारण है।

मुमुक्षु :-- अनंतानुबंधी...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। अनंतानुबंधी की बात कहाँ है? वह कहाँ कहते हैं? नहीं। वह तो बन्ध है, उसमें थोड़ा मोक्ष है।

'एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो--ऐसा मानना भ्रम है। इसलिये व्रत-अव्रत दोनों विकल्परहित...' देखो! व्रत

का विकल्प और अव्रत का विकल्प। अव्रत का अशुभ और व्रत का शुभ। **'जहाँ परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है...'** जहाँ परद्रव्य का ग्रहण-त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है--**'ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है।'** देखो! अकेला उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग। तीन तो विशेषण लगाया। उदासीन, वीतराग **'वही मोक्षमार्ग है।'** बीच में रागादि समकिती को आता है, मुनि को भी पंच महाव्रत आता है, बन्ध का ही कारण है, सर्वथा बन्ध का ही कारण है। किंचित् संवर का कारण (नहीं है)। चारित्रवंत को भी शुभराग तो (संवर का कारण) है नहीं। देखो!

'तथा निचली दशा में कितने ही जीवों के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है;...' निचली दशा में शुद्धोपयोग भी होता है और शुभ भी होता है। शुद्ध तो सातमें जाये तो होता है, नीचे हो तो शुभ होता है। युक्तपना कहा है लेकिन वह अपेक्षा से। समझ में आया? **'निचली दशा में कितने ही जीवों को शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना...'** यानी क्षण में शुभ आये ओर क्षण में शुद्ध में आते हैं। **'इसलिये उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है;...'** इसलिये उपचार से, व्यवहार से शुद्धोपयोग की भूमिका आती है उसके पहले थोड़ा आया तो उपचार से उसको मोक्षमार्ग कहा। **'वस्तु का विचार करनेपर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है;...'** कितना स्पष्ट किया है। **'वस्तु का विचार करनेपर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है;...'** व्यवहार मोक्ष का कारण कहा वह भी मोक्ष का घातक। देखो! व्यवहार मोक्ष का कारण कहा वह भी मोक्ष का घातक। पहले कहा न, मोक्ष का कारण कहा था न पहले? व्यवहार। व्यवहार मोक्ष का कारण वही निश्चय से मोक्ष का घातक है। **'ऐसा श्रद्धान करना।'** बहुत स्पष्ट किया है। (बन्ध का) कारण है वही मोक्ष का घातक है। देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बन्ध का कारण लिखा है? इसमें ऐसा लिखा है। ठीक!

मुमुक्षु :-- बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है।

उत्तर :-- बराबर है, वही बराबर है। पहले व्यवहार से कहा था न? इसमें वह है। अपने वह लिखा है? नये में क्या है? इसमें तो मोक्ष का कारण लिखा है। अर्थात् व्यवहार जो मोक्ष का कारण कहा था, वह बन्ध का ही कारण है और विचार करनेपर वह मोक्ष का घातक है। बन्ध है वह मोक्ष का साधक कहाँ से हो? ऐसा श्रद्धान करना। इसमें यह है, हाँ! मोक्ष का कारण है वही मोक्ष का घातक है, ऐसा शब्द है। लेकिन वास्तव में शब्द वह चाहिये, मेलवाला है। क्योंकि मोक्ष का कारण

यहाँ नहीं लेना है। इसलिये **'बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है–ऐसा श्रद्धान करना।'**

'इसप्रकार शुद्धोपयोग को ही उपादेय मानकर उसका उपाय करना,...' लो, एक शुद्धोपयोग को ही उपादेय जानकर उसका उपाय करना। **'और शुभोपयोग–अशुभोपयोग को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।'** दोनों। शुद्धोपयोग का आदर करना, अंगीकार करना और शुभ–अशुभ दोनों को हेय करना। चौथे, पाँचवे, छठवें। किसको यह हेय है? चौथे गुणस्थान से शुभोपयोग हेय? सात बोल आये न तुम्हारे? अरे..! चौथे से हेय। अरे..! पहले राग हेय माने बिना सम्यग्दर्शन तरफ दृष्टि होगी नहीं। राग का लक्ष्य छोड़े बिना, लक्ष्य छोड़ो कि हेय कहो, स्वभाव पर दृष्टि होगी नहीं। कहो, कितनी बात करते हैं, तो वह मान्य नहीं। टोडरमल नहीं, टोडरमल नहीं, आर्षवाक्य लाओ। यह आर्षवाक्य क्या कहता है? बन्ध का कारण है, पुण्य बन्ध का कारण है। मुनि का शुभभाव चारित्र में होता है, वह महाव्रत का ज़हर है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु :-- गोम्मटसार में यही है।

उत्तर :-- गोम्मटसार में भी यही है। तत्त्व तो एक ही बात है। मोहजोग संभवा, गुणस्थान है न? मोहजोग संभवा। व्याख्या है, मूल पाठ में है, गोम्मटसार में।

'शुभोपयोग–अशुभपोयगो को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।' अब थोड़ी दूसरी एक बात करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.–२४८८, चैत्र सुद–८, गुरुवार, दि. १२–४–१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १५

... पराश्रित व्यवहार सब छुड़ाया है ऐसा मैं मानता हूँ। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से जितने विकल्प हो, भेद पड़े वह सब भगवान ने छुड़ाया है। ..भाई! बड़ी गड़बड़ी करते हैं। विपरीत श्रद्धा रखे, त्यागी नाम धारे वह भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। ..भाई! आहाहा..! लोगों को बाह्य त्याग और बाह्य क्रियाकांड का